International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

लोकजागरण के उद्घोष कबीर

धर्मबीर
पीएच.डी. (हिन्दी)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
पंजीकरण संख्या : 05–BB–544
Email : dslangyan@gmail.com
फोन नं0 : 9050235589

कबीरदास भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं। कबीरदास का जन्म एक ब्राह्मणी की कोख से काशी में लहरतारा नाम तालाब के समीप सन् 1398 में हुआ। नीरू और नीमा नाम जुलाहा दम्पत्ति ने कबीर का पालन–पोषण किया। कबीर की पत्नी का नाम लोई तथा पुत्र और पुत्री का नाम क्रमशः कमाल और कमाली था।

कबीर अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है महान या सार्थक। कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे।

कबीरदास की रचनाओं का संकलन उनके शिष्य संत धर्मदास ने 'बीजक' नाम ग्रन्थ में किया। बीजक के तीन भाग हैं– साखी, सबद, रमैनी। इनकी मृत्यु सन् 1518 ई0 में हुई।

सन्त साहित्य परम्परा में कबीरदास का नाम सर्वोपरि है। सन्त काव्यधारा के प्रवर्तक कबीरदास जी ने हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वे एक सच्चे क्रान्तिकारी विचारक थे। जिन्होंने विवेक के स्तर पर समाज में फैली हुई सभी कुरीतियों को जाना और उनको दूर करने का प्रयास किया, इसलिए हम कबीरदास को समाज सुधारक के नाम से जानते हैं।

कबीर भक्त थे। भक्ति के प्रचार क्रम ही उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा, हिंसा, जाति–पाति, छुआछूत आदि का उम्रभर विरोध किया। इससे संबंधित कुछ उदाहरण :–

''कांकर पाथर जोरि के मस्जिद दई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।''[1]

दिन में रोजा रखत है, रात हनत है गाय।

यह तो खून वह बन्दगी, कैसी खुशी खुदाय।।[2]

''जाति–पाति पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरि को होई।''[3]

अतः कबीरदास जी युगद्रष्टा एवं क्रान्तिकारी विचारक थे। कबीर की वाणी हिन्दी साहित्य ही नहीं जन–जन की जुबान पर हैं।

''कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था। छूआछूत अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू–मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चर्मसीमा पर था और धर्म के ठेकेदार स्वार्थ की रोटियां धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन बुराईयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके। दोनों धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इस आवश्यकता की पूर्ति करते थे।''[4] कबीर के समय की सामाजिक व्यवस्था काफी खराब हो चुकी थी। जिन सिद्धान्तों की रचना समाज व धर्म की रक्षा के लिए की थी, वे ही सिद्धान्त अब धर्म व समाज के कारण बनते जा रहे थे।

पाखंडियों ने अपना जाल फैला दिया था। साधारण जनता को फंसाने के लिए। गरीब जनता भूखमरी व धार्मिक आडम्बरों में फंसती जा रही थी। कबीर भी उसी समाज में रहने वाले थे। इसलिए उन्होंने स्वयं लोगों के दुखों को महसूस किया। वे समाज के दुखों को दूर करने के लिए दिन–रात जागते व रोते रहते थे। लेकिन सारा संसार मस्त होकर खाता था, सोता था।

''दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।

सुखिया सब संसार है खावे और सोए।''[5]

कबीर ने लोगों को जागृत करने के लिए समाज में सुधार लाने के लिए बहुत अधिक प्रयास किया। उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन किया, एकेश्वरवाद को मान्यता दी और अवतारवाद की भी निन्दा की। उनका मानना है कि राम दशरथ का पुत्र न होकर निर्गुण निराकार ब्रह्म है–

''दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।

राम नाम का मरम न आना।''[6]

उन्होंने जाति प्रथा का खण्डन किया था। कबीर भक्त और कवि बाद में हैं। समाज सुधारक पहले हैं। वे समाज को जागृत करना चाहते थे, लोगों को सही रास्ता दिखाना चाहते थे। उनको समाज में जो भी गलत लगा उसका डटकर विरोध किया है –

''ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।

सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दत सोय।''[7]

कबीर ने मूर्ति पूजा करने को व्यर्थ कहा है उनका कहना है कि मूर्ति पूजने से भगवान नहीं मिलते। वे लोगों के इस पागलपन को उनकी बेवकूफी मानते हैं। उनका कहना है कि लोगों को उन पत्थरों की मूर्तियों की पूजा करनी छोड़ देनी चाहिए और कर्म करना चाहिए।

उनका कहना है कि मूर्तियों को पूजने से अच्छा है कि उस चक्की को पूजो जिसका पिसा आटा तुम्हारे पेट को भरता है।

''दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।

घर की चकिया कोई न पूजे जेहि का पीसा खाय''[8]

कबीर जी हिंसा के विरोधी थे वे कहते हैं कि बकरी तो केवल घास–पात खाती है और इस पाप के कारण उसकी खाल खींची जाती है, किन्तु जो व्यक्ति बकरी को खाते हैं, उनकी क्या दशा होगी–

''बकरी पाती खात है ताकि काटी खाल

जो नर बकरी खात है तिनके कौन हवाल।[8]

जीव–हिंसा का तो सभी सन्तों ने विरोध किया है। मनुष्य को पेट भरने के लिए भगवान ने अनाज, साग–सब्जी, फल आदि बहुत कुछ दिया है। लेकिन फिर भी पता नहीं मनुष्य जीव–जन्तुओं को क्यों मारकर खाता है।

कबीर का व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी था।[9] कबीरदास जिस समय में आविर्भूत हुए वह काल विषमत, नैराश्य, विश्वासघात, नृशंस, नर–संहार, रक्तपात, आक्रमण, विध्वंस का था। उस समय हिन्दू समाज पण्डितों और ब्राह्मणों से शासित हो गया था और वेद पुराण का आश्रय लेकर अपनी सत्ता की धाक लगाए हुए थे। उसी तरह मुसलमान समाज, काजी, मुल्ला और कुरान द्वारा अनुशासित था।

वास्तव में जिस तरह हिन्दू धर्म को भूल चुके थे। उसी तरह मुसलमान दोनों को भूल चुके थे। पण्डित और मौलवी ही समाज में विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों को फैलाने वाली मूल जड़े थी। कबीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ने इन मूल जड़ों को उखाड़ने का प्रयत्न किया। यहां एक व्यंग्यात्मक उदाहरण द्रष्टाव्य है –

''ना जाने तेरा साहब कैसा है।

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारें, क्या साहब तेरा बहिरा है ?

चिउंटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।।

पण्डित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।

अन्तर तेरे कपट–कतरनी सो भी साहब लखता है।

ऊँचा नीचा महल बनाया, गहरी नेंव जमाता है।''[10]

कबीर बुद्धिमानी थे और किसी भी सिद्धान्त का अन्धानुसरण उन्हें मान्य न था। उनका कहना था कि शास्त्र, पुराण तथा अन्य धार्मिक पुस्तकें, जिनके आधार पर लोग अपना मत निर्धारित करते है, अनेक भ्रमात्मक बातों से भरे पड़े है। अपने को ज्ञानी समझने वाले तथ्यों को भी समझ नहीं पाते और उनमें उलझ–पुलझ कर व्यर्थ ही मरते रहते हैं।

उरझि, पुरझि करि मरि रह्या, चारिड्ऊं वेदा मांहि।[11]

भक्तिकालीन जनजीवन अपने सामाजिक पाखण्डों तथा अंधविश्वासों से ग्रस्त था। पूरा समाज साम्प्रदायिक विद्वेष और जातीय भेदभाव की गहरी खाई में विभाजित था।

इस माहौल में सबसे अधिक उत्पीड़न साधारण जनता ही थी। इन दोनों क्षेत्रों को विकृत करने वालों में धर्म के ठेकेदार ही प्रमुख थे। इसलिए कबीरदास को आक्रमण की धार एक तरफ काजी–मुसलमानों की ओर थी तो दूसरी ओर हिन्दुओं के कर्मकाण्डी पुण्डे–पुरोहितों की तरफ। कबीर ने इन दोनों को चुनौती देते हुए भक्ति का एक सर्व–स्वीकृत मार्ग निकाला, जिसमें धार्मिक एकता और जातीय समानता की भावना मुख्य थी। यह मार्ग था निर्गुण निराकार की उपासना का मार्ग।

कबीर का मार्ग उनके अपने युग की आवश्यकता थी। इसके द्वारा जहां एक तरफ सबके लिए समान रूप से भक्ति का धार्मिक अधिकार प्राप्त किया जा सकता था वहीं दूसरी

तरफ सभी धर्मों में व्याप्त पाखण्ड एवं अंधविश्वास पर चोट की जा सकती थी। इसके लिए न तो मन्दिर–मस्जिद में जाने की जरूरत थी। और न ही तीर्थ–व्रत, रोजा–नमाज जैस क्रिया–कलापों की। इन कर्मकाण्डों के साथ पवित्रता का ऐसा भाव जुड़ा हुआ था जो निम्न जातियों एवं दलित समुदाय के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। किसी नीची जाति के लिए मन्दिर में जाना, पूजा–हवन आदि करना, छापा–तिलक लगाना, संख्या–गायत्री का पाठ करना, पुराण–भागवत आदि पढ़ना निषिद्ध था।

इन चीजों को ध्यान में रखते हुए कबीरदास ने सभी धार्मिक ब्राह्मचारों को पाखण्ड और आडम्बर घोषित किया है। हिन्दु–मुस्लिम एकता के लिए कबीरदास ने राम–रहीम की एकता पर बल दिया। साम्प्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा देने के कारण उन्होंने दोनों को पथभ्रष्ट कहा–

अब अरे इन दोऊन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करे बढ़ाई गागर छुवन न देई।

वैश्या के पायन तर सोवै यह देखों हिन्दुआई।

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी–मुर्गा खाई।

खाला करि बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई।

हिन्दुन की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।

कहै कबीर सुनौ भई साधौ कौन राह है जाई।[12]

इस प्रकार कबीरदास ने दोनों ही सम्प्रदायों के पाखण्डों का परदाफाश करते हुए राम और रहीम की एकता को सिद्ध किया तथा सबके लिए उपासना का एक मार्ग प्रस्तुत किया।

काजियों को फटकारते हुए उन्होंने कहा है कि ''ऐ काजी ! तुम किस कुरान का बखान करते हो उसे पढ़ते–पढ़ते कितने दिन बीत गए। लेकिन वास्तविकता का पता तुम्हें अब तक नहीं लग पाया। काजियों की तरह ही कबीर ने मुस्लमानों को भी फटकारते हुए कहा है कि

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

''ऐ मुल्ला ! तुम इतनी दूर से किसको बुला रहे हो, राम–रहीम तो सभी जगह व्याप्त है। यह बात तो सारे संसार को मालूम है कि ईश्वर गूंगा या बहरा नहीं है। यह बोलना बहुत बड़ा झूठ है। राम–रहीम तो घट–घट में व्याप्त है।

कबीर दास ने वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए, जाति–पाति, ऊँच–नीच, छुआ–छूत की भावना निषेद करते हुए मानव मात्र की समानता का सन्देश दिया था, वह आज भी प्रासंगिक है। मूर्ति–पूजा, यज्ञ–हवन, रोजा–नमाज, मन्दिर–मस्जिद, तीर्थ–व्रत आदि के माध्यम से जिन सामाजिक विषमताओं को हवा मिल रही थी। कबीर ने उनका खण्डन किया था। आज के साम्प्रदायिक तनाव के विरूद्ध सामाजिक सद्भावना की जरूरत को देखते हुए इस पर बहुत सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। जातीय आधार पर हरिजन–दहन, हिन्दु–मुस्लिम, हिन्दू–सिक्ख आदि के बीच साम्प्रदायिक दंगे, बावरी मस्जिद, राम–जन्मभूमि जैसे साम्प्रदायिक विवाद इतना भीषण रूप लेते जा रहे हैं कि इनसे देश की जनतान्त्रिक व्यवस्था खतरें में पड़ गई है। विवाद साधारण जनता की सामाजिक मुक्ति आड़े तो आ रही है। इनमें राष्ट्र की अखण्डता को भी खतरा पैदा हो गया है। इन परिस्थितियों में कबीर–साहित्य के सन्देश अधिक प्रासंगिक बन गए हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हमारे देश के नेताओं ने जनमत के दबाव के कारण अपने गणतान्त्रिक संविधान में कानून के सम्मुख सबकी समानता को मौलिक अधिकार के रूप में जो गारंटी दी है।

उसके लिए कबीर ने छः सात सौ वर्ष पहले जोरदार संघर्ष किया था। लिंग, जाति, धर्म, वर्ण आदि का भेदभाव किए बिना कानून के सम्मुख सबकी समानता संवैधानिक दृष्टि से अवश्य सुरक्षित कर दी गई है। इसके लिए अब धार्मिक संघर्ष के स्थान पर राजनीतिक संघर्ष आवश्यक है। इस संघर्ष में भी कबीर के संदेश हमारे लिए महत्व पूर्ण प्रेरक शक्ति बन सकते हैं। इसलिए वे आज भी प्रासंगिक है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

सन्दर्भ–ग्रंथ–सूची :–

1. ठाकुर जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह, कबीर पीयूस वाणी, वाराणसी, दशम् संस्करण, 2005, पृ0 3
2. सरस्वती पाण्डेय, गोविन्द पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2014, पृ0 101
3. डॉ. बहादुर सिंह, हिन्दी साहित्य का इतिहास, माधव प्रकाशन, पृ 144
4. डॉ. अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य प्रकाशन–साहित्य भवन 3/208 आगरा, मथुरा बाईपास निकट तुलसी सिनेमा (आगरा), पृ0 12
5. डॉ. प्रणब शर्मा, प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य (अ) प्रकाशक, विकास, प्रा0 लि0 पृ0 98
6. डॉ. अशोक, पृ0 13
7. वहीं
8. वहीं
9. वहीं
10. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
11. डॉ. श्यामसुन्दर दास (सं.) कबीर ग्रंथावली, पृ0 36
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर पृ0 353/247